NIGAMAGAM SERIES NO. 1

# नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत।

निगमागम मण्डली के आचार्य्य
द्वारा विरचित।

एवम्

उक्त साधुमण्डली द्वारा प्रकाशित॥

वैदिक यन्त्रालय अजमेर
में मुद्रित हुआ

(सम्वत् १९५५)

कलाब्दाः ४९९९

प्रथमावृत्तिः



मूल्य
सजिल्द १॥)
बिना जिल्द १)

NIGAMAGAM SERIES NO. 1.

# नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत ।

"निगमागम-मण्डली" के आचार्य्य
द्वारा विरचित ।

एवम्

उक्त साधुमण्डली द्वारा प्रकाशित ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर
में मुद्रित हुआ

( संवत् १९५५ )

कलाब्दाः ४९९९

प्रथमावृत्तिः



मूल्य
सजिल्द १॥)
बिनाजिल्द १)

ओं श्रीपरमात्मने नमः ॥

# उपहारपत्र ।

—:o:—

परमकल्याणास्पद श्रीमान् शाहपुरा नरेश श्री महाराजा नाहरसिंह प्रतापवानेषु परमशुभआशीर्वाद विज्ञापनमिदम् ।

राजन् !

आप की गुरुभक्ति स्वदेशानुराग तथा गुणग्राहिता बुद्धि से यह शरीर आप पर विशेष प्रसन्न है । परमकारुणिक श्रीभगवान् से यही प्रार्थना है कि आप के से बुद्धिमान् भारतीय नरपतिगणों के हृदय में धर्म्मबुद्धि एवं मातृभूमि–अनुराग की वृद्धि दिन प्रतिदिन करै ।

असम्पूर्ण विद्याभ्यास तथा सङ्ग प्रभाव के कारण आर्य्यगण आज-दिन प्रायः अपने अतुलनीय पूर्व्वगौरव को विस्मृत हो रहे हैं; इस कारण उन के उपकारार्थ यह "नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत" नामक क्षुद्रग्रन्थ प्रणयन कियागया । आशा है कि यह पुस्तक क्षुद्र होने पर भी मोहनिद्रा में निद्रित भारतवासियों की निद्रा भङ्ग करने में कथंचित् सहायता करेगा । आप भारतीय प्रसिद्ध सूर्य्यवंश अन्तर्गत "हिन्दू सूर्य्य" मेवार–राजकुलोद्भव हैं, इसकारण अवश्यही यह ग्रन्थ आप के आनन्द दायक होगा; इसी विचार से यह पुस्तक आप के करकमल में शुभ आशीर्वाद सहित उपहार दियागया । विज्ञापन मिति ।

आप का मङ्गलाकाङ्क्षी,

ग्रन्थकर्त्ता ।

ओं श्री सदाशिवपरमात्मने नमः ।

# प्रस्तावना

गत त्रिवेणीतीरस्थ महाकुम्भ के मेले में भारतवर्षीय साधुगण द्वारा संसार के मङ्गल साधनार्थ "निगमागम मंडली" के नाम से जो सभा स्थापित हुई है, उसकी नियमावली में एक प्रधान नियम है कि वर्त्तमान देश, काल, तथा पात्र के अनुसार जीवहितकारी हिन्दी भाषा के ग्रन्थ प्रकाशित किये जावें, और आवश्यकीय प्राचीन कठिन धर्म्म-ग्रन्थों पर वर्त्तमान समय उपयोगी भाषाभाष्य अतिसरल तथा हृदय-ग्राही भाषा में प्रचारित किये जावें । वर्त्तमान कालमाहात्म्य के कारण भारतवासीगणों में संस्कृत विद्या का प्रचार बहुत ही कम होगया है, एवं समय के देखने से ऐसी आशा भी नहीं होती कि पुनः संस्कृत विद्या का प्रचार बढ़े । इस कारण गभीर धर्म्मतत्वों को जबतक वर्त्तमान देश—भाषा में प्रकाशित न किया जायगा तबतक भारत के पूर्ण कल्याण होने की सम्भावना नहीं । हिन्दी भाषा ही भारतवर्ष के वर्त्तमान समय में सार्वभौम भाषा समझी जाती है; उत्तर हिमालय के पवित्र प्रदेश से लेकर दक्षिण में समुद्रतट पर्य्यन्त और पूर्व में ब्रह्मपुत्र के तीरवर्ती प्रदेश से लेकर पश्चिम में सिन्धुनदी तट तक सकल प्रदेशों में यह मधुर भाषा प्रचलित है, इसी कारण इस भाषा की सहायता से वैदिक—तत्वों का प्रकाश करना ही कार्य्यका-री समझा गया । क्रमशः उपनिषद्, षड्दर्शन तथा नाना आर्ष संहि-ताओं पर सरल और भावपूर्ण भाषाभाष्य प्रकाशित किये जावेंगे । इस महान् उद्देश्य के पूर्ण करने के अर्थ विचारवान् साधुगण परि-

श्रम कर रहे हैं," एवं कई एक ग्रन्थ रचित भी हो चुके हैं; अब से मुद्राङ्क कार्य्य नियमित होता रहेगा। सबसे प्रथम नवशिक्षित भारतवासियों के बोधार्थ प्राचीन भारत का गौरव इस "नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत" नामक क्षुद्र पुस्तक में प्रचारित किया जाता है। आशा है कि पाश्चात्यविद्यापक्षपाती भारतवासियों के नानासन्देह इस पुस्तक के पाठ करने से दूर हो सकेंगे। श्रीभगवान् साधुमण्डली के जीव-भारतहितकारी उद्यम को पूर्ण करें विज्ञापनमिति।

हरिद्वार
कलाब्दाः ४९९८

ग्रन्थकर्त्ता।

ओंनमो भगवते वासुदेवाय ॥

# मङ्गलाचरणम् ।

अविनय मपनय विष्णो,
दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय,
तारय संसारसागरतः ॥

दिव्यधुनीमकरन्दे,
परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे,
भवभयखेदच्छिदे बन्दे ॥

सत्यपिभेदापगमे,
नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रोहि तरङ्गः,
क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥

उद्धतनगभिदनुज,
दनुजकुलामित्रामित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति,
न भवति किं भवतिरस्कारः ॥

श्रीगुरवेनमः ॥

# नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वंस्वंचरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

प्रधानधर्म्मशास्त्र प्रणेता राजऋषि मनु ने लिखा है कि इस भारतवर्ष के ब्राह्मणगणों से शिक्षा प्राप्त होकर सम्पूर्ण जगत् ज्ञान प्राप्त करेगा, अर्थात् भारतवर्ष ही सृष्टि के आदि में ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त करके परवर्ती काल में इस पृथिवी के और देशों को अपने उपदेशद्वारा शिक्षित करेगा । भारत के इस नवीन युग में, कराल कलिकाल के इस वर्तमान विकराल समय में, प्राचीन आर्य्य जाति की इस अधःपतित अवस्था में कौन इस मनुवाक्य को विश्वास कर सकता है । जब देखते हैं कि भारतवासी आज दिन सामान्य ज्ञान प्राप्ति के अर्थ और देशवासियों के द्वार पर भिखारी बने फिरते हैं, जब देखते हैं कि और जातियों की साधारण युक्ति से ही आर्य्यजाति ने स्वीकार कर लिया है कि हम भी दूसरे देश के रहनेवाले थे, हम भी पूर्व्वकाल में असभ्य अज्ञानी पशुवत् थे, जब देखते हैं कि उन्होंने अनार्य्यभाव को आर्य्यभाव समझ कर ग्रहण कर लिया है और त्रिकालदर्शी महर्षिगण उपदेशित आर्य्यभाव को अनार्य्य असभ्यभाव समझ कर त्याग देने में अग्रसर हुए हैं, तब कैसे विश्वास करेंगे कि वे ऐसे शास्त्र वाक्यों को सत्य समझ सके हैं ।

जिस प्रकार उन्मादग्रस्त मनुष्य बुद्धिनाश के कारण सारे संसार को उन्मादग्रस्त देखता है, वैसे ही काल प्रभाव के कारण कुशिक्षा प्रभाव से बुद्धि मलीन होकर आज दिन आर्य्य संतान भी अपने आप को अनार्य्य समझने लगे हैं, और इस कारण ही वे अपने अभ्रान्त शास्त्र वाक्यों को भ्रान्तिमूलक समझने में प्रवृत्त हुए हैं। आजकल के नवीन भारतवासी कहते हैं कि हम अयुक्तिक विषय नहीं मानते, यदि युक्तियुक्त विषय होतो स्वीकार कर सक्ते हैं। इस कारण उन के ही वर्त्तमान पश्चिमी गुरुगणों के प्रामाणिक लेख तथा सिद्धान्त समूह द्वारा सिद्ध किया जायगा कि महर्षिगणों की इस प्रकार की भविष्यत्वाणी मिथ्या अथवा काल्पनिक नहीं है, इस क्षुद्र पुस्तक में उनकी ही नवीन युक्तिसमूह तथा साक्षात् प्रमाण व पश्चिमी विद्वान् गणों के अनुमान प्रमाण द्वारा ही पूज्यपादमहर्षि गणों की गभीर, पूर्ण और अभ्रान्त ज्ञान गरिमा का प्रमाणसंग्रह द्वारा नवीनशिक्षा प्राप्त भारत का भ्रम दूर करने में यत्न किया जा रहा है, वस्तुतः उनकी ही नवीन दृष्टि से आज इस प्रबन्ध में प्रवीन भारत की अवस्था का विचार किया जारहा है।

# प्रकृति विचार।

बहिःप्रकृति अन्तःप्रकृति की धातृ है, जैसे बहिःप्रकृतियुक्त स्थान में जीव लालित पालित होगा उसकी अन्तःप्रकृति भी तद्रूप ही होती जायगी। मानवगण जैसी प्रकृति माता की गोद में प्रतिपालित होते हैं उससे वैसीही शिक्षा को भी प्राप्त होते हैं, प्रकृति माता उन को अपने हाव भाव और इङ्गित द्वारा जैसे सिखाती जाती है वैसेही वे प्रकृति पुत्र उठना, बैठना, हँसना, बोलना आदि कार्य्य सीखते जाते हैं।

यह बहिःप्रकृति के बल का ही कारण है कि आफ़्रिका देश में कृष्णवर्ण काफ़री और यूरोप देश में श्वेतवर्ण फ़िरंगी जन्मते हैं;यह प्रकृति के बल का ही कारण है कि मनुष्य पिता माता से जन्मा हुआ शिशु व्याघ्र-सङ्ग में प्रतिपालित होकर (जैसे कानपुर ज़िले में सन् १८५६ई०में एक चौदह पन्दरह साल का बालक भेड़ियों के सङ्ग में मिला था ) व्याघ्र-वृत्ति को धारण कर लेता है; यह प्रकृति के बल का ही कारण है कि एक आर्य्यजाति ही जब पञ्जाब में जन्म ग्रहण करते हैं तो बलशाली और साहसी होते हैं; और वेही जब बङ्ग देश में जन्म ग्रहण करते हैं तो अति दुर्बल, साहस हीन, परन्तु बुद्धिमान् होते हैं । भारत की प्रकृति और सब देशों की प्रकृति से कुछ विलक्षण ही है । जगत् के किसी देश में तीन ऋतु, और किसी देश में चार ऋतु प्रकट हुआ करते हैं; परन्तु यह भारतवर्ष ही है कि जहां छःओं ऋतु पूर्णरूपेण प्रकाशित होते रहते हैं। जगत् के विशेष विशेष देशों में एक समय पर एक ही ऋतु प्रकट हुआ करता है, परन्तु यह भारतवर्ष ही है कि जहां अन्वेषण करने पर एक काल में विशेष विशेष भागों में विशेष विशेष ऋतु प्रकटे ही रहते हैं; ग्रीष्मकाल में यदिच मारवाड़ प्रदेश में घोर ग्रीष्मता का विकाश होता है, तथापि उसी समय में दाक्षिणावर्त्त में बसन्त और हिमालय की ओर नाना प्रदेशों में शीत,शिशिर आदि ऋतुओं का प्रादुर्भाव भी बना रहता है; मानों यह भारतवर्ष ही है कि जहां छः ऋतुगण हस्तधारण करते हुए विचरण करते ही रहते हैं; ऋतुगणों में भ्रातृ प्रेम होना भारतबर्ष में ही सम्भव है । यह भारतवर्ष ही है कि जहां पृथिवी के सब पर्वतों से अति उच्चपर्वत हिमालय विराजमान है; यह भारतवर्ष ही है कि

जहां पृथिवी की सकल नदियों में पवित्र, विशेष विभूति युक्त (यूरोप के प्रधान प्रधान वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि पवित्र गङ्गाजल में कदापि कीट उत्पन्न नहीं होता, और वे मुक्तकण्ठ होकर कहते हैं कि इस जल में पृथिवी के और जलों से कुछ विशेषता है ) गङ्गा नदी अपने तरलतरङ्गों को धारण करती हुई जीवगणों को पवित्र कर रही है । पृथिवी के और देशों में प्रायः एक ही प्रकार की भूमि देखने में आती है परन्तु प्रकृतिमाता की लीलाभूमि इस भारतभूमि में सब प्रकार की ही भूमि दृष्टिगोचर होती है; अनन्त तुषार–आवृत पर्वत–शिखर, नाना प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म, ओषधि से परिपूर्ण उपत्यका, अनन्त योजन व्यापी सुन्दर समतल भूमि, घोर बालुकामय जलशून्य मरुस्थल और जलपूर्ण निम्नतल भूमि ( यथा कच्छ प्रदेश में और सुन्दरबन आदि में ) आदि सब प्रकार की–भूमिविचित्रता इस भारतवर्ष में ही देखने में आती है । पृथिवी के और नाना देशों में एक वर्ण के मनुष्य ही देखे जाते हैं, (यथा यूरोप में श्वेतवर्ण के मनुष्य, आफ्रिका में कृष्णवर्ण के मनुष्य और चीन में पीत वर्ण के मनुष्य इत्यादि ) परन्तु यह भारत प्रकृति की ही पूर्णता है कि यहां के अधिवासियों में सब वर्ण देख पड़ते हैं, उज्वलगौर, गौर, उज्वलश्याम, श्याम, कृष्ण और पीत सब वर्ण के भारतवासी ही नयनगोचर होते हैं । यह भारत प्रकृति की ही श्रेष्ठता है कि यहां समस्त संसार के जीवजन्तुगण जन्मा करते हैं; वृहत् हस्ती से लेकर नाना प्रकार के विचित्र मूषिक तक इस भारत प्रकृति की पूर्णता को प्रमाणित करते हैं । अन्वेषण द्वारा यही सिद्ध होगा कि जितने प्रकार के श्रेष्ठ और निकृष्ट जन्तु, जितने प्रकार के श्रेष्ठ

और निकृष्ट कीट, और जितने प्रकार के श्रेष्ठ और निकृष्ट पक्षी पृथि-
वी के नाना देशों में उत्पन्न हुआ करते हैं, वे सब भारतवर्ष के बन और
उपबनों को सुशोभित करते हैं; यदिच कदापि कोई विलक्षण ज-
न्तु यहां उत्पन्न न होता हो, अथवा उसकी उत्पत्ति यहां से नष्ट
होगई हो, तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि वे सब इस भूमि में उत्पन्न
होकर जीवित रह सकते हैं। परन्तु यहां के बहुतेरे जीवगण यदि यूरोप
आदि देशों में भेजे जायें तो कदापि वहां की प्रकृति में जीवित नहीं रह
सकते; इस कारण से भारतीय प्रकृति की श्रेष्ठता सर्ववादि सम्मत है।
और यह तो जगद् विख्यात है कि जितने प्रकार के फल, जितने प्र-
कार के अन्न, जितने प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म, औषधि और बूंटी
आदि भारतवर्ष में उत्पन्न होती हैं उस प्रकार की और किसी देश में
होय ही नहीं सकतीं। इस कारण यह भारतभूमि ही पृथिवी की और
भूमियों की आदर्शभूमि है; इसी कारण भारत की प्रकृति ही पूर्ण प्र-
कृतिशक्तियुक्त है। यह कहही चुके हैं कि बहिःप्रकृति अन्तः प्रकृ
ति की धातृ है; इस कारण जब भारत की प्रकृति ही पूर्ण प्रकृति
है तब भारतबर्ष में ही पूर्ण मानव का जन्म होना सम्भव है। यदिच को-
ई यूरोप बासी संस्कृत में विशेष ज्ञान लाभ कर लेवे, यदिच कोई चीन
देश बासी अथवा कोई तुरुक देश बासी संस्कृत विद्या में निपुण हो
जावे, तथापि यह प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है कि वे कदापि संस्कृत भाषा
का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकेंगे, परन्तु यह भारतवासियों की ही
शक्ति है कि वे चाहें जिस भाषा की योग्यता लाभ करें उसी भाषा के
उच्चारण में पूर्ण निपुणता प्राप्त कर लिया करते हैं। धन
और सम्पत्ति के सिवाय कोई मानव जाति सम्पूर्ण उन्नति को प्राप्त

नहीं कर सकती, परन्तु इस बिचार में भी भारतवर्ष सर्वोत्कृष्ट ही है; इस भूमि की अद्भुत उर्वराशक्ति, इस भूमि के अन्तर्गत स्वर्ण, रौप्य, मणि, माणिक्य और नानाप्रकार के खनिज पदार्थों की खानियां, भारतसमुद्रगर्भ की मुक्ता और पराल आदि मूल्यवान् पदार्थों की उत्पादिका शक्ति और भारतवर्ष के बनों के नाना अमोल पदार्थों की बिचित्रता ही भारत के ऐश्वर्य्य सम्बन्ध में पूर्णता सिद्ध कर रहे हैं। यह भारतवर्ष की ऐश्वर्य पूर्णता का ही कारण है कि आज प्रायः दो सहस्र बर्ष से यह भारत बिजातीय नरपति गण द्वारा नियमितरूपेण लुण्ठित होने पर भी अभी तक इस की ऐश्वर्य्यता की पूर्ण हानि नहीं हुई है, यह भारतबर्ष की ऐश्वर्य्य पूर्णता का ही कारण है कि आज दिन सर्ब्ब श्रेष्ठ सम्राट् गणों की तीब्रलोभदृष्टि इस पर ही बनी है; यह भारतबर्ष की ऐश्वर्य्य पूर्णता का ही कारण है कि भारतविजयी नरपति पृथिवी में सर्ब्ब श्रेष्ठ सम्राट् कहाता है। इन सब प्रत्यक्ष प्रमाणों के अतिरिक्त लेखद्वारा भी भारत प्रकृति की श्रेष्ठता का प्रमाण सब यूरोपीय विद्वान्‌गण लिखित भारतइतिहास आदि में पाया जाता है; जितने निरपेक्ष पश्चिमी ऐतिहासिक हुए हैं उन सबों ने भारतबर्ष को ही पृथिवी भर में सर्ब्बश्रेष्ठप्रकृतियुक्त करके वर्णन किया है। इन कारणों से यह स्वतःसिद्ध ही है कि भारतबर्ष ही पूर्णप्रकृतियुक्त भूमि है, और पूर्णप्रकृतियुक्त मानव भारतबर्ष में ही जन्मग्रहण कर सक्ते हैं।

# शरीर की पूर्णता ॥

श्री भगवान् वेदव्यासजी ने कहा है कि " गायन्ति देवाः किल गीतगानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे; स्वर्गाऽपवर्गाऽऽस्पदमार्गभूते,

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्" । अर्थात् स्वर्ग के देवत्व से भारत का मनुष्यदेह लाभ करना श्रेष्ठ है, क्योंकि सुकृतिगण यहां जन्म ग्रहण करके स्वर्ग भोग प्राप्त किया करते हैं। राजऋषि मनुजी ने भी कहा है कि "चाहे पृथिवी के और किसी भाग में जन्म हो परन्तु यदि मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना चाहें तो इस श्रेष्ठ भूमि का ही आश्रय लेना उचित है" । जब मनुष्य पीड़ित अथवा हीनबल रहता है तब वह पूर्णरूपेण न तो शारीरिक शक्ति चालना कर सकता है और न मानसिक उन्नति ही लाभ कर सकता है, परन्तु रोग अथवा दुर्बलता मुक्त होने पर ही वह अपनी योग्यता के अनुसार सब कुछ कर सकता है; उसी प्रमाण के अनुसार जब मानवगण पूर्ण प्रकृति युक्त स्थान में जन्म ग्रहण करेंगे तब ही वे शारीरिक और मानसिक पूर्णता को प्राप्त कर सकेंगे; और जब प्राकृतिक पूर्णता प्राप्त करेंगे तब ही उन्नत बुद्धि युक्त होकर आध्यात्मिक पथ में अग्रसर होते हुए ऐहलौकिक और पारलौकिक श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकेंगे। काल प्रभाव से वर्त्तमान भारत की अवस्था कुछ ही हो, अदृष्टचक्र के परिवर्त्तन से भारतवर्ष कैसी ही अधोगति को प्राप्त होगया हो; परन्तु भारतवर्ष में ही प्रकृति का विकाश है, और भारतवर्ष में ही पूर्ण मानवगण उत्पन्न होकर अपनी शक्तियों को यथावत् रख सकते हैं इस में कोई भी सन्देह नहीं । सत् प्रकृति का संग होने से शरीर उन्नत होकर सत्वगुण विशिष्ट होता है, शरीर सत्वगुण विशिष्ट होने से अन्तःकरण भी सत्वगुण को धारण करता है, इस कारण सात्विकभूमि भारतभूमि को महर्षि गणों ने स्वर्ग से भी श्रेष्ठ पद दिया है । जैसी प्रकृति का संग रहेगा वैसे ही साधकगण साधनपथ में अग्रसर

हो सकेंगे, इसी कारण साधकगणों को महर्षिगणों ने साधुसंग और तीर्थसेवा का उपदेश किया है और इस कारण ही और देश बासियों को उन्हों ने साधन के अर्थ भारतवर्ष का आश्रय लेने की आज्ञा दी है। भारत की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही आध्यात्मिक उन्नति की परा काष्ठा भारतवर्ष में ही सम्भव है; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण वह धर्म्म विस्तार की आदि भूमि समझी जाती है; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारणही यहां की स्त्रीगण शारीरिक और मानसिक पूर्णता को प्राप्त करके जगत् में अतुलनीय हो रही हैं; उन की प्रकृति पूर्ण होने के कारण हीं वे सतीत्व, शीलता, लज्जा, पतिभक्ति-की पूर्णता अर्थात् पति के अर्थ ही जीवन धारण करना, वात्सल्य-स्नेह की पूर्णता इत्यादि स्त्री प्रकृति उपयोगी सत्गुण युक्त हुआ करती हैं; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही यहां के पुरुष गण स्वभाव से ही प्रायः दयालु, सुशील और धर्म्म परायण हुआ करते हैं; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही सनातन वैदिक धर्म्म की शिक्षा से बहुदेशव्यापी बौद्धधर्म्म, और बौद्धधर्म्म की शिक्षा से ईसाई धर्म्म और पुनः उस से ही इस्लाम धर्म्म की वृद्धि होती हुई समस्त संसार में नाना धर्म्म विस्तारित हो गये हैं। प्रकृति की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण शरीर की पूर्णता है, शरीर की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण मानसिक पूर्णता है, और मानसिक पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण धर्म्म की पूर्णता है। धर्म्म राज्य में भारतवर्ष ने जितनी उन्नति की है, धर्म्म जगत् में भारतवर्ष ने जितना अन्वेषण किया है, उतना न तो और किसी देशने किया है और न भविष्यत् में करने की आशा है; वर्तमान समय के स्वदेशिय और विदेशिय सब विद्वान्गण ही एक

वाक्य से इस विषय को स्वीकार कर रहे हैं; "थिओसोफ़ीकल् सभा" और चिकागो नगर की धर्म्ममहोत्सव-सभा के पुस्तकादि सब अपने इस विचार को पूर्णरूपेण पोषण कर रहे हैं। इस कारण यह स-प्रमाण ही है कि जहां धर्म्म का पूर्ण विकाश होसके वही भूमि पू-र्ण प्रकृति युक्त समझी जा सकती है; और उसी भूमि में ही धर्म्म-संग्रह लक्षण रहने के कारण वहां ही पूर्णमानव जन्म ग्रहण कर सकते हैं।

## शिल्प उन्नति ॥

बुद्धि विकाश का प्रथम लक्षण शिल्प निपुणता है। बुद्धि जब सूक्ष्म अवस्था धारण करती जाती है तब यदिच वह पूर्ण सूक्ष्मता को धारण करके आध्यात्मिक जगत् में पहुंच जाती है तत्राच प्रथम अव-स्था में वह स्थूल जगत् में ही बिचरण करती हुई नाना स्थूल जगत् सम्बन्धीय सुचारु बिचित्रता प्रकाश करने लगती है; यही बहिर्ज-गत् सम्बन्धीय बिचित्रताही शिल्पनैपुण्य है। इतिहास भारतवर्ष की इस शिल्प निपुणता का पूर्णरूपेण प्रमाण दे रहा है। यह भारत-बर्ष की शिल्प निपुणता का ही कारण है कि पूर्व्व काल में भा-रत—ऐश्वर्य्य के लोभ से लोभित होकर बिदेशीय नरपति साईरस्, डेरायस, सेमीरामिस् और अलेक्ज़ंडर आदि बीरगण; और मध्य-काल में चंगेज़ख़ाँ, महमूद ग़ज़नवी, तैमूरलङ्ग, और बाबर आदि यो-द्धागण; और पिछले दिनों यूरोप के स्पेनीज़्, पोर्चुगीज़, फ्रेंच और अंग्रेज़ जातिगण इस पवित्र भूमि में आये थे। यह भारतवर्ष की शिल्प निपुणता का ही कारण है कि, प्रथम में मुसलमान राजागणों ने भारत में अधिकार किया था और अब अंग्रेज़ जाति इस भूमि के अधिकारी हो

रहे हैं। यदिच अब उस शिल्प निपुणता का यहां नाम मात्र भी नहीं रहा, तथापि यह कहना ही पड़ेगा कि उस के कारण ही इन विदेशीय लोगों की दृष्टि भारत पर पड़ी थी। आज दिन भी प्राचीन इतिहास समूह, भारतवर्ष के प्राचीन मंदिर आदि के ध्वंसावशेष, और पुराणों की (रामायण में रामविवाह और महाभारत में युधिष्ठिरसभा आदि वर्णन) अद्भुत गाथा इस शिल्प निपुणता का प्रमाण भली भांति दे रहे हैं। आज कल रेलगाड़ी को देख जनगण आश्चर्य को प्राप्त होते हैं, परंतु भारतवर्ष के प्राचीन विमान, भारतवर्ष के अद्भुत अस्त्र शस्त्र समूह, भारतवर्ष के प्राचीन नानायान आदि का वर्णन पाठ करने से यह स्वतः ही सिद्ध होजायगा कि यदिच यूरोप ने शिल्प विद्या में बहुत ही उन्नति की है, तथापि उन की बुद्धि में अभी तक समाता ही नहीं है कि किस प्रकार से भारतवर्ष ने उन पदार्थों की सृष्टि की थी, किस प्रकार से भारत ने शिल्प विद्या में इतनी उन्नति कर डाली थी। थोड़े ही दिन बीते अधःपतित भारत की जो शिल्प विद्या थी; पराधीन भारतवासी भी जो काश्मीरी शाल, ढाकाई वस्त्र, काशी आदि स्थानों के पटवस्त्र और नाना सुवर्ण, रौप्य, और रत्न आदि जड़ित आभूषण आदि बनाया करते थे उस की समानता भी अभी तक शिल्पनिपुण यूरोप से नहीं की गई। इलोरा आदि स्थानों के गुफा मंदिर, श्रीजगन्नाथ आदि देवताओं के देवालय, चित्तौर आदि दुर्ग, कटक आदि स्थानों के नदीबन्ध, आगरे के ताजमहल आदि यवन मंदिर आदि प्राचीन स्थानों के देखने से प्राचीन भारत की शिल्प उन्नति का दृढ़ प्रमाण मिल सक्ता है। पश्चिमी विद्वानों के ऐन्टीक्विटीज़ और आर्किऔलोजी ( Antiquities & Archæology. ) सम्बन्धीय

ग्रन्थ ही इस विचार के प्रमाण हैं । अभी तक पश्चिमी विद्वान् गण जो भारतवर्ष के ध्वंसावशेष स्थानों के देखने को आते हैं, वे सब प्राचीन मूर्त्तियों को देख कर एक वाक्य हो यही कहते हैं कि किसी समय में भारतवर्ष ने शिल्प विद्या में उन्नति की पराकाष्ठा प्राप्त की थी; वे ऐसा भी कहते हैं कि यदि भारत शिल्प विद्या में पूर्णता न प्राप्त करता तो उन खण्डित मूर्त्तियों में नाना अलङ्कार, नाना वस्त्र, नाना आभूषण, नाना अस्त्र, नाना यान आदि के अद्भुत चिन्ह कहां से देख पड़ते क्योंकि जो पदार्थ देखने में आता है शिल्पकार गण उसी का अनुकरण कर सक्ते हैं ।

# चिकित्सा विज्ञान उन्नति ॥

मानव हितकारी चिकित्सा विज्ञान में भी भारतवर्ष ही आदि गुरु है । आजकल के पश्चिमी पण्डितगणों ने यही सिद्ध किया है कि पाश्चिमी चिकित्सा विद्या उन्हों ने रोम के पण्डितों से प्राप्त की थी, और रोम अधिवासियों ने वह विद्या ग्रीस से पाई थी, उन्हों ने यह भी सिद्ध किया है कि ग्रीस अधिवासी गणों ने इस विद्या में उन्नतिलाभ केवल तीन सहस्त्र बर्ष के अन्तर्गत ही किया है । परन्तु जब देखते हैं कि अपने आचार्य्यगणों का तिरोभावकाल प्रायः पांच सहस्त्र वर्ष के लगभग समझा जा सकता है; और जब यह भी ग्रीस इतिहास में देखते हैं कि ग्रीस राज्य की प्रथम उन्नत अवस्था में वहां से बहुत राज पुरुष भारतवर्ष में आये थे और यहां से नाना विद्या भी सीख गये थे ; पुनः जब अपनी चिकित्सा विद्या की प्रशंसा उनकी पुस्तकों में पाई जाती है; तब इन लक्षणों से मानना ही पड़ेगा कि अपनी चि-

कित्सा विद्या ग्रीस की चिकित्सा विद्या से पूर्व्व ही प्रकट हुई थी । तब यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन को यूरोप चिकित्सकगण अपना गुरु बताते हैं भारतवर्ष उनका भी गुरु है । चिकित्सा विद्या में जो जो विषय रहने से उस की पूर्ण उन्नति समझी जासकती है, वे सब-ही आयुर्वेद में थे; शस्त्रविद्या, रसायनविद्या, धातुप्रयोगविद्या, और काष्ठादि भेषजप्रयोगविद्या सब ही अपने आयुर्वेद में पाये जाते हैं डाक्तर रायली ( Dr. Raily ) साहब ने बड़ी प्रशन्सा के साथ मुक्तकण्ठ होकर कहा है कि "प्राचीनभारतबासीगणों के ग्रन्थ देखने से प्रकट होता है कि वे शस्त्रचिकित्सा में विशेष निपुण थे; प्रायः १२७ प्रकार के शस्त्र वे शरीर पर प्रयोग किया करते थे; इस के अतिरिक्त शस्त्रव्यवहार के साथ नानाप्रकार की औषधियां भी प्रयोग किया करते थे" । आर्य्य चि-कित्सा विद्या में विशेषता यह है कि उस में स्वतन्त्ररूपेण काष्ठादिक और धातुज औषधियों की उन्नति की है; कोई आचार्य्य केवल का-ष्ठादि औषधियों की ही व्यवस्था करगये हैं और कोई केवल धातुज औ-षधियों कोही प्रसिद्ध कर गये हैं; यदिच ऐसे भी आचार्य्य बहुत हैं कि जिन्होंने उभय प्रकार की औषधियों काही ग्रहण किया है, तथापि पूर्व्व-कथित मत की स्वतन्त्रता ही अपने चिकित्साशास्त्र की विलक्षणता है । आयुर्वेदोक्त चिकित्सा शास्त्र कितनी उन्नति पर पहुंचा था वह इस के नाड़ीज्ञानशास्त्र के पाठ करने से ही अनुभव हो सकता है; कि जिसकी सहायता से नाड़ी परीक्षाद्वारा सकल प्रकार के रोगों का भली भांति निदान हो सकता है; और भी विलक्षणता यह है कि एक मात्र नाड़ी ज्ञान सेही तीन मास, छः मास, अथवा ततोऽधिक काल पूर्व्व में भी भविष्यत् रोगका निरूपण हो सकता है। यह नाड़ीज्ञानशास्त्र इतना

गम्भीर और सूक्ष्म है कि आजतक पश्चिमी विद्वान्गण उस को समझ नहीं सके।

# युद्धविद्या की उन्नति

मुसलमान आक्रमण से पूर्ववर्त्ती समरविद्या को देख कर कोई कोई भावुक ऐसा कहने लगते हैं कि समरविद्या में भारतवर्ष ने ऐसी उन्नति नहीं की थी कि जैसी आज दिन यूरोप कर रहा है; उन का यह विचार भी भ्रमपूर्ण ही है। जब देखते हैं कि आर्य्य जाति के चार उपवेद यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और स्थापत्तवेद इन चारों में से एक उपवेद धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी थी; जब देखते हैं कि प्राचीन आर्य्यजाति के युद्धास्त्र ऐसे अद्भुत थे कि जिनका निर्माण कौशल अभी तक समझ में नहीं आता; और जब देखते हैं कि उनकी अस्त्रचालन रीती और नानाव्यूहरचनाकौशल आजकल के विद्वान् गण तक नहीं समझ सकते; तब कैसे कहेंगे कि उनकी समराविद्या वर्त्तमान यूरोपीय समरविद्या से न्यूनथी। यहतो ऐतिहासिक प्रमाण ही है कि जब ग्रीस के अधिबासीगण और मुसलमान सम्राट्गण भारत में आक्रमण करते थे तो वे भारत की पादातिक, अश्वारोही, रथी और हस्त्यारोही सेना को देखकर मोहित हुआ करते थे; पृथिवीविजयी महाबीर अलक्जन्डर पृथिवी की किसी जाति से नहीं डरा परन्तु केवल वह प्रथम तो राजा पुरु की वीरता से अतिमोहित हुआ और पुनः मगध सम्राट् के सेनाबल को सुनकर ही स्वराज्य में लौटगया। प्राचीन आर्य्यजाति की अद्भुत अस्त्रविद्या, वीरत्व और व्यूह रचना आदि युद्ध कौशल कितनी उन्नति को धारण किये हुए थे उस का प्र-

माण संस्कृत के प्राचीन इतिहास पाठ करने से ही भली भांति अनुभव होता है; रामायण और महाभारत लिखित महायुद्धों की वर्णना बुद्धिमान्गण शान्तचित्त होकर पढने से ही यह स्वीकार करलेंगे कि भारत की समर विद्या के तुल्य यूरोप की समर विद्या होने में अभी बहुत विलम्ब है। कोई कोई यह युक्ति लगाया करते हैं कि जब भारतवर्ष बन्दूक और तोप व्यवहार नहीं जानता था तब कैसे उसकी समर विद्या की उन्नति स्वीकार करेंगे; परन्तु आर्य्यशास्त्र न पढनेसे ही ऐसे सन्देह उठा करते हैं। जब प्राचीन भारत के अनन्त अस्त्र शस्त्रों में नालास्त्र और शतघ्नी का वर्णन देखते हैं और जब उस्के बड़े बड़े युद्धों में उन दोनों आयुधों का प्रयोग भी देखते हैं तब कैसे स्वीकार करेंगे की भारत बासी गणों ने बन्दूक और तोपका आविष्कार नहीं कियाथा प्राचीन ग्रन्थों के देखने से प्रमाणित होता है कि वे तोप को शतघ्नी, बन्दूक को नालास्त्र बारूद को उर्व्वघ्नी और गोला को गुडक कहा करते थे; बारूद उर्व्वनामा ऋषि द्वारा आविष्कृत हुआ था इस कारण उस को उर्व्वघ्नी कहते थे। प्राचीन कवि महर्षि बाल्मीक के प्रसिद्ध रामायण ग्रन्थ में लेख है कि " परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सगुडोपलाः चिक्षिपुर्भुजबेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः,, अर्थात् अपने बाहुओं के वेग से बड़ा शब्द करने वाली चक्रयुक्त गोलापूरित शतघ्नियों को लेकर लङ्का के बीच फेंकते हुए पुनः श्रीभगवान् वेदव्यासजीके महाभारत ग्रन्थमें लेख है कि " उर्व्वघ्नीं प्रोथितां कृत्वा शतघ्नीं गुड़कै र्युताम्," अर्थात् उर्व्वघ्नीं और गुड़क भर कर इस युद्ध में शतघ्नी चालित हुई थी; इन प्रमाणों से अधिक बंदूक और तोप की सिद्धि के अर्थ और क्या प्रमाण देने का प्रयोजन है। यह यथार्थ है कि मुसलमान आ-

क्रमण से पूर्व्ववर्ती भारतवीर गण प्राचीन युद्ध विद्या को भूल गए थे, क्योंकि यह तो सर्ववादि सम्मत है कि महाभारत का महायुद्ध और बौद्ध गणों के महाविप्लव द्वारा भारत श्मसानप्राय होगया था और इसी कारण परवर्ती मनुष्यगण सब क्रियासिद्ध विद्या भूल गए; उपपत्तिक अंश की ( Theoratical ) विद्या तो पुस्तक द्वारा ज्ञात हो सकती है परन्तु क्रियासिद्ध ( Praetical ) विद्या बिना क्रियासिद्ध गुरु के नहीं आसक्ती; और उन विप्लवों के कारण इन विद्याओं के क्रियासिद्ध मनुष्यों का लोप हो गया तो उन के साथ ही साथ इस विद्या का भी लोप होना अवश्य सम्भव है । तथापि उपरोक्त विषय को आज कल के पश्चिमी विद्वान्गण भी स्वीकार करते हैं; प्रसिद्ध गङ्गा खाद (नहर गङ्ग) खोदते समय सर-आर्थर कटलि ( Sir Arthur cutliy ) साहब ने उत्तर पश्चिम प्रदेश में पृथिवी मध्यस्थित एक बृहत् नगर का ध्वंसावशेष पाया था और उस में कई एक तोपें भी मिली थीं; उक्त साहब बहादुर का यह मत है कि वह नगर प्राचीन हस्तिनापुर था, और वे साहब यह भी कहते हैं कि इन तोप द्वारा यह प्रमाण भी होता है कि प्राचीन भारत वासीगण तोप का व्यवहार जानते थे। अनुमान प्रमाण द्वारा प्राचीन भारत में तोप और बन्दूक का होना सिद्ध ही है; परन्तु नवीन यूरोप में भारतवर्ष के प्राचीन रौद्र, अग्नि, वारुण, शक्ति, ब्रह्म आदि महास्त्रों की शक्ति को अभी तक किसी ने हृदयंगम ही नहीं किया है ॥

## संगीत विद्या की पूर्णता

तीसरा उपवेद गंधर्ववेद भारत वासियों का सङ्गीत शास्त्र है। आधुनि-

क यूरोप वासी गणों ने इस शास्त्र को केवल शिल्प करके जाना है, और इस के द्वारा केवल वैषयिक आनन्द भोग किया करते हैं; परन्तु प्राचीन भारतवासियों की यहविद्या वैसी नहीं थी;इसकी उसकाल में इतनी उन्नति हुई थी कि सङ्गीत शास्त्र एक प्रधान विज्ञान शास्त्र समझा जाता था, और इसका विशेष सम्वन्ध आध्यात्मिक जगत् से रक्खागया था । जहां कुछ क्रिया है वहां अवश्य शब्द होगा । कदापि क्रिया की शक्ति के न्यून होने से उसका शब्द अपने कर्णगोचर न होता हो क्योंकि सूक्ष्मतर विषयों को अपनी इन्द्रियग्रहण नहीं करती; परन्तु जहां क्रिया है, जहां कंपन है वहां किसी न किसी प्रकार का शब्द अवश्य होगा । इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि क्रिया भी एक प्रकार का कार्य्य है और समष्टि रूप से उस क्रिया की ध्वनि का नाम प्रणव अर्थात् ओंकार है; शास्त्र में ओंकार के लक्षण लिखे हैं यथा "तैलधारा मिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्"; और यह ध्वनि योगीगणों को भली भांति स्वतः ही सुनाई देती है । जैसे समष्टिरूप प्रकृति की ध्वनि ओंकार है वैसे ही व्यष्टि रूप नाना प्रकृति के नाना स्वर हैं; और नाना स्वर रूपी नाना प्रकृति के आविर्भाव करने के अर्थ हीं संगीत शास्त्र बना है "वेदानां सामवेदोऽस्मि" ऐसे वाक्य द्वारा जो सामवेद की महिमा शास्त्रों नें गाई है सो सङ्गीत शास्त्र की सहायता से ही पढ़ीजाती है; यह सङ्गीत की माधुरी का ही प्रभाव है कि सामवेद और वेदों से मनुष्यों के हृदय को शीघ्रग्रहण करता है । यूरोपीय सङ्गीत विद्या के पक्षपाती होने पर भी जब प्रोफेसर बोयलर ( Professr Beler ) आदि पश्चिमी सङ्गीत आचार्य्यगणों को भारतवर्षीय राग रागिनी कौशल की प्रशंसा करते देखते हैं तब यह कहनाही पड़ेगा कि यूरोप के वि

द्वान्‌गण अपनी सङ्गीत विद्या की उन्नति को देखकर मोहित हो रहे हैं। आर्य्य ऋषिकाल में इस सङ्गीत शास्त्र द्वारा षोड़श सहस्त्र राग रागिनियां गाई जाती थीं और उन के साथ तीनसो छत्तीस ताल बजते थे; इस के देखने से ही बुद्धिमान्‌गण जान सकते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष की सङ्गीत विद्या ने जितनी उन्नति की थी यूरोप बासी अभी तक उस को समझ भी नहीं सक्ते। यह नाना राग रागिनियां नाना प्रकृति के आविर्भाव करने के अर्थ ही बनाई गई थीं; मनुष्य हृदय में जिस प्रकार प्रकृति के आविर्भाव करने की आवश्यकता हुआ करती थी उसी प्रकार के राग रागिनी द्वारा (यथा भैरव राग का रूप वैराग्य मय, हिण्डोल राग का रूप विलास मय है इत्यादि रूपेण) कोई मन्त्र अथवा गान विशेष गाने से उन के हृदय में वैसे ही प्रकृति की स्फूर्ति होने लगती थी।जिस प्रकार युद्धशास्त्र आदि क्रियासिद्ध विद्यायें क्रियासिद्ध आचार्यों के अभाव से लोप हो गई हैं उसी प्रकार प्राचीन मार्ग सङ्गीत ( वेदगाने की रीति ) और देशी सङ्गीत (ईश्वरसम्बन्धीयध्रुवपद गानेकी रीति )विद्या भी क्रियासिद्ध उपदेशक के अभाव से लोप होगई है। अब जो भारतवर्ष में सङ्गीत विद्या सुनने में आती है वह यथार्थ में प्राचीन सङ्गीतविद्या नहीं है, वह प्राचीन सङ्गीतशास्त्र का जीर्ण कङ्काल मात्र है , अर्थात् यह विद्या वह नवीन विद्या है जो मुसलमान सम्राटों के समय प्राचीन सङ्गीत के अनुकरण पर उत्पन्न हुई थी। इन थोड़े ही विचारों से बुद्धिमान् गण समझ सकते हैं कि पूज्यपाद ऋषिगण प्रणीत सङ्गीत शास्त्र की कैसी गम्भीरता थी और वे कैसे वैज्ञानिकभित्ती पर स्थित थे।

# स्थापत्तविद्या की उन्नति

भारतवासियों का चतुर्थ उपवेद स्थापत्तवेद है, स्थापत्तवेद शिल्प शास्त्र और नानावैज्ञानिक विद्या को कहते हैं। यदिच आजकल के उदाहरण पर कपड़े बुनने की कल, दिया सलाई की कल, मैदा पीसने की कल, आदि दीन दुःखीजन दुखदायी कलें भारतवर्ष में नहीं हैं; तत्राच एक समय में भारतवर्ष ने शिल्पविद्या और विज्ञानविद्या में इतनी उन्नति की थी कि जिसकी धारणा अच्छे लोग नहीं कर सक्ते। यह संसार परस्पर का बन्धन है; मानवगणों में परस्पर की सहायता परस्पर की सहानुभूति परस्पर की एकता और परस्परका पुरुषार्थ दान प्रदान सम्बन्ध ही से मानवजाति का सांसारिक सुख है; यह परस्पर का सम्बन्ध जितना बढ़ेगा उतना ही संसार में सुख बढ़ेगा, और जितना घटेगा उतना ही संसार का सुख घटकर दुःख बढ़जायगा। महर्षिगण अपनी दूर दृष्टि द्वारा इस विषय को जानते थे इसकारण ही योग्यता रखने पर भी उस प्रकार के दीन दुःखी जन दुःखदायी विज्ञान चर्चा नहीं करते थे; आजकल इन यन्त्रों की उन्नति से बाह्यतः यदिच सुगमता देख पड़ती है परन्तु मनुष्य गणों का वह पारस्परिकसम्बन्ध कम होजाने से आन्तरिक दुःख बढ़जाता है; यह विचार केवल अपनी ही कल्पना नहीं है किन्तु आजकल के बड़े बड़े पश्चिमी विद्वान् और भावुकगण सब मुक्तकण्ठ होकर ऐसे दूरदर्शी वाक्य कह रहे हैं। जिस२विद्या की उन्नति द्वारा यथार्थ में मनुष्य जाति की उन्नति होसक्ती है, अर्थात् भूत, भविष्यत्, और वर्तमान इन तीनों कालों में ही समानरूपेण मानवजाति उस कार्य्य फल को भोग कर सक्ती है, उस२ विद्या की उन्नति में ही केवल त्रिकालदर्शी

महर्षियोंने ध्यान दिया था । अङ्कविज्ञान,बीजगणित,दशमिक, संख्या, त्रिकोणमिति यामेति, फलितज्योतिष, गणितज्योतिष, सामुद्रिक, केरल, स्वरोदय, जीवस्वरविज्ञान, कोकशास्त्र, योगविज्ञान, साहित्यविज्ञान विद्युद्विज्ञान, समाजविज्ञान, आदि नाना विद्या की उन्नति द्वारा त्रिकालदर्शी महर्षिगणोंने संसार के बहुत हीकल्याण साधन बनाये है । बुद्धिमान् जन अपनी साधारण बुद्धिद्वारा ही यह समझ सकते हैं कि जो महर्षिगण इस प्रकार के गभीर शास्त्रसमूह के आदि आविष्कार कर्ता हैं वे क्या आजकल की सी लौकिक विद्याओं की सृष्टि नहीं कर सकतेथे; परन्तु केवल जीवगणों का भविष्य अदृष्ट विचार करके उन्होंने इस प्रकार के ऐहलौकिक स्थापत्त विद्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया था । इन उपरोक्त विद्याओं की उन्नति के विषय में यदिच यह प्रत्यक्ष ही है कि इन सर्वविद्याओं में से बहुत एक की उन्नति यूरोप में आजदिन हो रही है;तत्राच बुद्धिमानगणों को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन सबोंके आदि सृष्टिकर्त्ता ही पूजनीय समझे जासकते हैं;एक शास्त्र को प्रथम आविष्कार करना ही कठिन विषय है; तत्पश्चात् पथ मिलजानेपर, स्वरूप निर्णय हो जाने पर, लक्ष्य स्थिर होने पर सब ही उस पथ में अग्रसर होसकते हैं; यदिच आजादिन यूरोपवासीगण ज्योतिषशास्त्र को नवीन यन्त्रों की सहायता से विशेष उन्नति के पद पर पहुंचा रहे हैं तत्राच यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिन मेधावी मनुष्यों ने आदिकाल में इस ज्योतिष विज्ञान को आविष्कार किया था वे वर्तमान विद्वानों से सहस्रगुण श्रेष्ठत्व पद के अधिकारी हैं ।

# अङ्कविद्या की उन्नति

यह तो प्राचीन इतिहास वेत्त यूरोपीय पण्डितगण स्वीकार ही करते हैं कि बीजगणित, दशमिक, सङ्ख्यानिर्णय, त्रिकोणमिति, यामेति, रेखागणित, गणित, आदि अङ्कविज्ञान के आदिकर्ता भारतवर्ष के महर्षिगण ही हैं। यूरोपीय अध्यापक प्रोफेसर प्लेफेअर ( Professr Play foer ) साहब नें अपने पुस्तक में लिखा है कि आर्य्य जाति की त्रिकोणमिति शास्त्र बहुत ही प्राचीन है, उन के सूर्य्य सिद्धान्त ग्रन्थ में जिस प्रकार त्रिकोणमिति की क्रियायें लिखी हैं वे ग्रीसदेशवासी अध्यापकों की क्रियाओं से वहुत ही श्रेष्ठ हैं; इन साहब ने और भी लिखा है कि जिस प्रकार भारतवासिओं की त्रिकोणमिति है वैसी विद्या यूरोप के पण्डितगण षोड़श शताब्दी के पहिले नहीं जानते थे। उन्होंने और भी लिखा है कि सूर्य्य सिद्धान्त ग्रन्थ रचित होने से पहिले यामेती अर्थात् रेखागणित शास्त्र भारतबासीगण सम्पूर्ण रूपेण जानते थे। गणिततत्व का पूर्णप्रमाण ब्रह्मगुप्त आदि आचार्य्यों के ग्रन्थों में भली भांति पाया जाता है; उन प्राचीनग्रन्थों को देख कर यूरोपवासीगण यह एकमत हो के स्वीकार करते हैं कि दशमिक संख्या का आविष्कार भारत से ही हुआ है। आर्य्यभट्ट आदि आचार्य्यों के ग्रंथ से बीजगणित की उन्नति का पूर्णप्रमाण पाया जाता है; पुनः डीओ फेन्टस नामक ग्रीस देशीय पण्डित जो कि गत २२६० वर्ष के लगभग वर्त्तमान थे उन के पुस्तक देखने से प्रमाणित होता है कि उन्होंने इनही भारतीय आचार्य्यों के ग्रन्थों की सहायता से ही अपनी विद्या की ऐसी उन्नति की थी। इतिहासों में प्रमाण है कि खालिफ आलमानसर हारु-